Chapter बयासी

वृन्दावनवासियों से कृष्ण तथा बलराम की भेंट

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि सूर्य-ग्रहण के अवसर पर किस तरह यदुगण तथा अनेक अन्य राजा कुरुक्षेत्र में मिले और उन्होंने भगवान् कृष्ण से सम्बन्धित कथाओं की चर्चा चलाई। इसमें

यह भी बतलाया गया है कि किस तरह कुरुक्षेत्र में कृष्ण ने नन्द महाराज तथा अन्य वृन्दावनवासियों से मिलकर, उन्हें परम आनन्द प्रदान किया।

यह सुनकर कि पूर्ण सूर्य-ग्रहण पड़ने वाला है सारे भारतवर्ष के लोग, जिनमें यादवगण भी सम्मिलित थे, विशेष पुण्य पाने के लिए कुरुक्षेत्र में एकत्र हुए। जब सारे यदुजन स्नान करके अन्य आवश्यक अनुष्ठान कर चुके, तो उन्होंने देखा कि मत्स्य, उशीनर तथा अन्य स्थानों के राजा भी आये हुए हैं। यही नहीं, कृष्ण के विरह से गहन चिन्ता का अनुभव करने वाले नन्द महाराज तथा व्रज के सारे ग्वाले भी आये हुए हैं। अपने इन पुराने मित्रों को देखकर, जब सारे यादवों ने अति प्रसन्न होकर एक-दूसरे का आलिंगन किया, तो प्रेम के अश्रु गिरने लगे। उनकी पत्नियों ने भी अत्यन्त हर्षपूर्वक एक-दूसरे का आलिंगन किया।

जब महारानी कुन्ती ने अपने भाई वसुदेव तथा अपने परिवार के अन्य सदस्यों को देखा, तो उनका शोक जाता रहा। फिर भी उन्होंने वसुदेव से कहा, ''हे भ्राता! मैं अत्यन्त अभागिनी हूँ, क्योंकि मेरे कष्ट के समय तुम सबों ने मुझे भुला दिया। हाय, जिस पर विधि विपरीत होता है, उसे उसके सम्बन्धी भी भूल जाते हैं।''

वसुदेव ने उत्तर दिया, ''हे बहिन! हर व्यक्ति विधाता की कठपुतली है। हम यादवों को कंस ने इतना सताया कि तितर-बितर होकर हमें पराये देशों में शरण लेनी पड़ी। अतएव तुम्हारे साथ सम्पर्क बनाये रखने का हमारे पास कोई साधन ही न रहा।''

वहाँ उपस्थित राजागण भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनकी पत्नियों को देखकर आश्चर्यचकित थे और वे यादवों की प्रशंसा इस बात के लिए करने लगे कि उन्हें भगवान् का सान्निध्य प्राप्त है। नन्द महाराज को देखकर सारे यादव फूले नहीं समाये और उन सबों ने उनका कस कर आलिंगन किया। वसुदेव ने भी बड़े हर्ष से नन्द का आलिंगन किया और स्मरण किया कि जब वे कंस द्वारा सताये जा रहे थे, तो नन्द ने उनके पुत्रों—कृष्ण तथा बलराम—को किस तरह अपने संरक्षण में रखा। बलराम तथा कृष्ण ने माता यशोदा का आलिंगन किया और उन्हें शीश नवाया, किन्तु भावातिरेक से उनके गले रुँध गये, जिससे वे कुछ बोल नहीं पाये। नन्द तथा यशोदा ने अपने दोनों पुत्रों को गोद में उठाकर उनका आलिंगन किया और इस तरह उन्होंने विरह-दुख से अपने को विमुक्त किया। रोहिणी तथा देवकी

दोनों ने यशोदा का आलिंगन किया और अपने प्रति दिखाई गई मित्रता का स्मरण करके उन्हें बतलाया कि कृष्ण तथा बलराम का पालन-पोषण करके उन्होंने जो अनुग्रह किया है, उसका बदला इन्द्र की सम्पत्ति द्वारा भी नहीं चुकाया जा सकता।

तत्पश्चात् भगवान् तरुण गोपियों से एकान्त स्थान में मिले। उन्होंने उन्हें यह कह कर सान्त्वना दी कि मैं समस्त शक्तियों का स्रोत होने से सर्वव्यापी हूँ। इस तरह उनके कहने का मन्तव्य था कि गोपियाँ उनसे कभी भी पृथक् नहीं हो सकतीं। बहुत काल बाद कृष्ण से पुन: मिलकर गोपियों ने इतनी ही प्रार्थना की कि उनके चरणकमल उनके हृदयों में प्रकट हों।

श्रीशुक उवाच
अथैकदा द्वारवत्यां वसतो रामकृष्णयो: ।
सूर्योपराग: सुमहानासीत्कल्पक्षये यथा ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अथ—तब; एकदा—एक बार; द्वारवत्याम्—द्वारका में; वसतो:—रहते हुए; राम-कृष्णयो:—बलराम तथा कृष्ण के; सूर्य—सूर्य का; उपराग:—ग्रहण; सु-महान्—अत्यन्त विशाल; आसीत्—था; कल्प—ब्रह्मा के एक दिन के; क्षये—अन्त होने पर; यथा—जिस तरह।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : एक बार जब बलराम तथा कृष्ण द्वारका में रह रहे थे, तो ऐसा विराट सूर्य-ग्रहण पड़ा मानो, भगवान् ब्रह्मा के दिन का अन्त हो गया हो।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर इंगित करते हैं *अथ* तथा *एकदा* शब्द संस्कृत साहित्य में प्राय: नवीन कथा की शुरुआत करने के लिए प्रयुक्त होते हैं। यहाँ ये शब्द विशेष रूप से सूचित करते हैं कि कुरुक्षेत्र में यदुओं तथा वृष्णियों का पुन: मिलाप क्रमबद्ध रूप में सुनाया जा रहा है।

श्रील सनातन गोस्वामी ने *वैष्णव तोषणी* टीका में बतलाया है कि इस बयासीवें अध्याय की घटनाएँ भगवान् बलदेव की व्रज-यात्रा (अध्याय ६५) के बाद तथा महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ (अध्याय ७४) के पूर्व की हैं। आचार्य तर्क देते हैं कि ऐसा हो सकता है क्योंकि सूर्यग्रहण के समय सारे कुरुओं ने, जिनमें धृतराष्ट्र, युधिष्ठिर, भीष्म तथा द्रोण सम्मिलित थे, श्रीकृष्ण से मित्र की तरह मिल कर उनकी संगति का प्रसन्नतापूर्वक लाभ उठाया हो। दूसरी ओर, राजसूय यज्ञ में दुर्योधन की पाण्डवों के प्रति जोर की ईर्ष्या भड़क उठी। इसी के तुरन्त बाद दुर्योधन ने युधिष्ठिर तथा उनके भाइयों को जुआ

खेलने के लिए आमंत्रित किया, जिसमें छल से उनका साम्राज्य लेकर उन्हें बनवास दे दिया। बनवास से पाण्डवों की वापसी के तुरन्त बाद ही कुरुक्षेत्र का महायुद्ध हुआ जिसमें भीष्म तथा द्रोण मारे गये। अतएव ऐसा किसी भी तर्क के अन्तर्गत सम्भव नहीं है कि कुरुक्षेत्र में सूर्य-ग्रहण राजसूय यज्ञ के बाद पड़ा हो।

तं ज्ञात्वा मनुजा राजन्पुरस्तादेव सर्वतः ।
समन्तपञ्चकं क्षेत्रं ययुः श्रेयोविधित्सया ॥ २ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको; ज्ञात्वा—जान कर; मनुजाः—लोग; राजन्—हे राजा (परीक्षित); पुरस्तात्—पहले से; एव—भी; सर्वतः—सभी जगहों से; समन्त-पञ्चकम्—समन्तपंचक नामक (जो कुरुक्षेत्र जनपद के अन्तर्गत है); क्षेत्रम्—स्थान में; ययुः—गये; श्रेयः—लाभ; विधित्सया—उत्पन्न करने की इच्छा से।

हे राजन्, पहले से इस ग्रहण के विषय में जानते हुए अनेक लोग पुण्य अर्जित करने की मंशा से समन्तपञ्चक नामक पवित्र स्थान में गये।

तात्पर्य : ५,००० वर्ष पूर्व के वैदिक ज्योतिर्विद सूर्य तथा चन्द्र-ग्रहणों की भविष्यवाणी उसी प्रकार कर सकते थे, जिस तरह हमारे आधुनिक ज्योतिर्विद करते हैं। किन्तु प्राचीन ज्योतिर्विदों का ज्ञान और भी आगे बढ़ा हुआ था, क्योंकि वे ऐसी घटनाओं के कर्मफल को समझते थे। सूर्य तथा चन्द्र-ग्रहण सामान्य रूप से, कतिपय अपवादों को छोड़कर, अत्यन्त अशुभ होते हैं। किन्तु जिस तरह अन्यथा अशुभ एकादशी भगवान् हरि के गुणगान करने से लाभप्रद बन जाती है, उसी तरह किसी ग्रहण का समय भी उपवास तथा पूजा के लिए उपयोगी है।

समन्तपञ्चक नामक पवित्र तीर्थस्थल कुरुक्षेत्र में स्थित है, जहाँ कुरु-राजाओं के पूर्वजों ने अनेक वैदिक यज्ञ सम्पन्न किये। इसलिए कुरुओं को विद्वान ब्राह्मणों ने सलाह दी थी कि ग्रहण के समय व्रत रखने के लिए यह सर्वोत्तम स्थान होगा। उनसे बहुत काल पूर्व परशुराम ने अपने द्वारा की गई हत्याओं का प्रायश्चित्त करने के लिए कुरुक्षेत्र में तपस्या की थी। उन्होंने वहाँ जो पाँच तालाब—समन्तपञ्चक—खोदे थे वे द्वापर युग के अन्त तक बने हुए थे और वे आज भी हैं।

निःक्षत्रियां महीं कुर्वन् रामः शस्त्रभृतां वरः ।
नृपाणां रुधिरौघेण यत्र चक्रे महाह्रदान् ।

ईजे च भगवान् रामो यत्रास्पृष्टोऽपि कर्मणा ॥ ३ ॥
लोकं सङ्ग्राहयन्नीशो यथान्योऽघापनुत्तये ।
महत्यां तीर्थयात्रायां तत्रागन् भारतीः प्रजाः ॥ ४ ॥
वृष्णयश्च तथाक्रूरवसुदेवाहुकादयः ।
ययुर्भारत तत्क्षेत्रं स्वमघं क्षपयिष्णवः ॥ ५ ॥
गदप्रद्युम्नसाम्बाद्याः सुचन्द्रशुकसारणैः ।
आस्तेऽनिरुद्धो रक्षायां कृतवर्मा च यूथपः ॥ ६ ॥

शब्दार्थ

निःक्षत्रियाम्—राजाओं से विहीन; महीम्—पृथ्वी को; कुर्वन्—करके; रामः—परशुराम ने; शस्त्र—हथियारों को; भृताम्—धारण करने वालों के; वरः—सबसे श्रेष्ठ; नृपाणाम्—राजाओं के; रुधिर—खून की; ओघेण—बाढ़ से; यत्र—जहाँ; चक्रे—बनाया; महा—विशाल; ह्रदान्—सरोवर, झीलें; ईजे—पूजा किया; च—तथा; भगवान्—भगवान्; रामः—परशुराम ने; यत्र—जहाँ; अस्पृष्टः—अछूता; अपि—यद्यपि; कर्मणा—कर्म तथा उसके फल से; लोकम्—संसार को; सङ्ग्राहयन्—उपदेश देते हुए; ईशः—भगवान्; यथा—मानो; अन्यः—दूसरा व्यक्ति; अघ—पाप; अपनुत्तये—दूर करने के लिए; महत्याम्—विशाल; तीर्थ-यात्रायाम्—पवित्र तीर्थयात्रा के अवसर पर; तत्र—वहाँ; आगन्—आये; भारतीः—भारतवर्ष के; प्रजाः—लोग; वृष्णयः—वृष्णि-जाति के सदस्य; च—तथा; तथा—भी; अक्रूर-वसुदेव-आहुक-आदयः—अक्रूर, वसुदेव, आहुक (उग्रसेन) तथा अन्य; ययुः—गये; भारत—हे भरतवंशी (परीक्षित); तत्—उस; क्षेत्रम्—पवित्र स्थान में; स्वम्—अपने अपने; अघम्—पापों को; क्षपयिष्णवः—उखाड़ फेंकने के इच्छुक; गद-प्रद्युम्न-साम्ब-आद्याः—गद, प्रद्युम्न, साम्ब इत्यादि; सुचन्द्र-शुक-सारणैः—सुचन्द्र, शुक तथा सारण के साथ; आस्ते—रहे; अनिरुद्धः—अनिरुद्ध; रक्षायाम्—रक्षा करने के लिए; कृतवर्मा—कृतवर्मा; च—तथा; यूथ-पः—सेना-नायक।

पृथ्वी को राजाओं से विहीन करने के बाद योद्धाओं में सर्वोपरि भगवान् परशुराम ने समन्तपञ्चक में राजाओं के रक्त से विशाल सरोवरों की उत्पत्ति की। यद्यपि परशुराम पर कर्मफलों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा था, फिर भी सामान्य जनता को शिक्षा देने के लिए उन्होंने वहाँ पर यज्ञ किया। इस तरह अपने को पापों से मुक्त करने के लिए उन्होंने सामान्य व्यक्ति जैसा आचरण किया। अब इस समन्तपञ्चक में तीर्थयात्रा के लिए भारतवर्ष के सभी भागों से बहुत बड़ी संख्या में लोग आये थे। हे भरतवंशी, इस तीर्थस्थल में आये हुए लोगों में अनेकवृष्णिजन—यथा गद, प्रद्युम्न तथा साम्ब—अपने-अपने पापों से छुटकारा पाने के लिए आये थे। अक्रूर, वसुदेव, आहुक तथा अन्य राजा भी वहाँ गये थे। द्वारका की रक्षा करने के लिए सुचन्द्र, शुक तथा सारण के साथ अनिरुद्ध एवं उन्हीं के साथ उनकी सशस्त्र सेनाओं के नायक कृतवर्मा भी रह गये थे।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार नगर की रक्षा करने के लिए श्रीकृष्ण का पौत्र अनिरुद्ध द्वारका में इसीलिए रह गया क्योंकि वह दिव्य-लोक श्वेत-द्वीप के रक्षक के रूप में भगवान् विष्णु का आदि रूप है।

ते रथैर्देवधिष्ण्याभैर्हयैश्च तरलप्लवैः ।
गजैर्नदद्भिरभ्राभैर्नृभिर्विद्याधरद्युभिः ॥ ७ ॥
व्यरोचन्त महातेजाः पथि काञ्चनमालिनः ।
दिव्यस्रग्वस्त्रसन्नाहाः कलत्रैः खेचरा इव ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

ते—वे; रथैः—रथों (पर सवार सैनिकों) सहित; देव—देवताओं के; धिष्ण्य—विमानों; आभैः—के अनुरूप; हयैः—घोड़ों के साथ; च—तथा; तरल—लहरों (के समान); प्लवैः—जिसकी गति; गजैः—हाथियों के साथ; नदद्भिः—चिग्घाड़ करते; अभ्र—बादल; आभैः—के सदृश; नृभिः—तथा पैदल सिपाहियों के सहित; विद्याधर—विद्याधर देवताओं (जैसे); द्युभिः—तेज से; व्यरोचन्त—(यादव राजकुमार) तेजवान प्रतीत हो रहे थे; महा—अत्यन्त; तेजाः—शक्तिशाली; पथि—मार्ग पर; काञ्चन—सोने की; मालिनः—मालाएँ पहने; दिव्य—दैवी; स्रक्—फूलों की माला; वस्त्र—वस्त्र; सन्नाहाः—तथा कवच; कलत्रैः—अपनी पत्नियों के साथ; खे-चराः—आकाश में विचरण करने वाले देवताओं के; इव—समान।

बलशाली यदुगण बड़ी शान से मार्ग से होकर गुजरे। उनके साथ साथ उनके सैनिक थे, जो स्वर्ग के विमानों से होड़ लेने वाले रथों पर, ताल-ताल पर पग रख कर चल रहे घोड़ों पर तथा बादलों जैसे विशाल एवं चिंग्घाड़ते हाथियों पर सवार थे। उनके साथ दैवी विद्याधरों के ही समान तेजवान अनेक पैदल सिपाही भी थे। सोने के हारों तथा फूल की मालाओं से सज्जित एवं कवच धारण किये हुये यदुगण दैवी वेशभूषा में इस तरह शोभा दे रहे थे कि जब वे अपनी पत्नियों के साथ मार्ग पर आगे बढ़ रहे थे, तो ऐसा लग रहा था, मानो आकाश-मार्ग से होकर देवतागण उड़ रहे हों।

तत्र स्नात्वा महाभागा उपोष्य सुसमाहिताः ।
ब्राह्मणेभ्यो ददुर्धेनूर्वासःस्रग्रुक्ममालिनीः ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; स्नात्वा—स्नान करके; महा-भागाः—परम पुण्यात्मा (यादवगण); उपोष्य—उपवास करके; सु-समाहिताः—बड़े ही ध्यानपूर्वक; ब्राह्मणेभ्यः—ब्राह्मणों को; ददुः—दान दिया; धेनूः—गौवें; वासः—वस्त्र; स्रक्—फूल-मालाओं; रुक्म—सोने की; मालिनीः—तथा मालाओं से युक्त।

समन्तपञ्चक में सन्त स्वभाव वाले उन यादवों ने स्नान किया और फिर अत्यन्त सावधानी के साथ उपवास रखा। तत्पश्चात् उन्होंने ब्राह्मणों को वस्त्रों, फूल-मालाओं तथा सोने के हारों से सज्जित गौवें दान में दीं।

रामह्रदेषु विधिवत्पुनराप्लुत्य वृष्णयः ।
ददुः स्वन्नं द्विजाछ्येभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥ १० ॥

शब्दार्थ

राम—परशुराम के; ह्रदेषु—सरोवरों में; विधि-वत्—शास्त्रीय आदेशों के अनुसार; पुनः—फिर; आप्लुत्य—स्नान करके; वृष्णयः—वृष्णिजनों ने; ददुः—दान दिया; सु—सुन्दर; अन्नम्—भोजन; द्विज—ब्राह्मणों को; अछ्येभ्यः—सर्वोत्तम; कृष्णे—कृष्ण के प्रति; नः—हमारी; भक्तिः—भक्ति; अस्तु—हो; इति—इस प्रकार।

तत्पश्चात् वृष्णिवंशियों ने शास्त्रीय आदेशों के अनुसार एक बार फिर परशुराम के सरोवरों में स्नान किया और उत्तम कोटि के ब्राह्मणों को अच्छा भोजन कराया। उन्होंने उस समय यही प्रार्थना की, ''हमें भगवान् कृष्ण की भक्ति प्राप्त हो।''

तात्पर्य : यह द्वितीय स्नान अगले दिन उनके उपवास की समाप्ति का द्योतक है।

स्वयं च तदनुज्ञाता वृष्णयः कृष्णदेवताः ।
भुक्त्वोपविविशुः कामं स्निग्धच्छायाङ्घ्रिपाङ्घ्रिषु ॥ ११ ॥

शब्दार्थ

स्वयम्—अपने से; च—तथा; तत्—उनके (कृष्ण) द्वारा; अनुज्ञाताः—अनुमति दिये गये; वृष्णयः—वृष्णियों ने; कृष्ण—भगवान् कृष्ण; देवताः—एकमात्र देव; भुक्त्वा—खाकर; उपविविशुः—बैठ गये; कामम्—इच्छानुसार; स्निग्ध—शीतल; छाया—छाया वाले; अङ्घ्रिप—वृक्षों के; अङ्घ्रिषु—पैरों पर, नीचे।

फिर अपने एकमात्र आराध्यदेव भगवान् कृष्ण की अनुमति से वृष्णियों ने कलेवा किया और फुरसत में होने पर शीतल छाया प्रदान करने वाले वृक्षों के नीचे बैठ गये।

तत्रागतांस्ते ददृशुः सुहृत्सम्बन्धिनो नृपान् ।
मत्स्योशीनरकौशल्यविदर्भकुरुसृञ्जयान् ।
काम्बोजकैकयान्मद्रान्कुन्तीनानर्तकेरलान् ॥ १२ ॥
अन्यांश्चैवात्मपक्षीयान्परांश्च शतशो नृप ।
नन्दादीन्सुहृदो गोपान्गोपीश्चोत्कण्ठताश्चिरम् ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

तत्र—वहाँ; आगतान्—आये हुए; ते—उन्होंने (यादवों ने); ददृशुः—देखा; सुहृत्—मित्रों; सम्बन्धिनः—तथा सम्बन्धीजनों; नृपान्—राजाओं को; मत्स्य-उशीनर-कौशल्य-विदर्भ-कुरु-सृञ्जयान्—मत्स्यों, उशीनरों, कौशलों, विदर्भों, कुरुओं तथा सृञ्जयों को; काम्बोज-कैकयान्—काम्बोजों तथा कैकयों को; मद्रान्—मद्रों को; कुन्तीन्—कुन्तियों को; आनर्त-केरलान्—आनर्तों तथा केरलों को; अन्यान्—अन्यों को; च एव—भी; आत्म-पक्षीयान्—अपनी टोली वालों; परान्—विपक्षियों को; च—तथा; शतशः—सैकड़ों; नृप—हे राजा (परीक्षित); नन्द-आदीन्—नन्द महाराज इत्यादि; सुहृदः—उनके प्रिय मित्र; गोपान्—ग्वालों को; गोपीः—गोपियों को; च—तथा; उत्कण्ठिताः—चिन्तित; चिरम्—दीर्घकाल से।

यादवों ने देखा कि वहाँ पर आये अनेक राजा उनके पुराने मित्र तथा सम्बन्धी—मत्स्य, उशीनर, कौशल्य, विदर्भ, कुरु, सृञ्जय, काम्बोज, कैकय, मद्र, कुन्ती तथा आनर्त एवं केरल देशों के राजा थे। उन्होंने अन्य सैकड़ों राजाओं को भी देखा, जो स्वपक्षी तथा विपक्षी दोनों ही थे। इसके अतिरिक्त हे राजा परीक्षित, उन्होंने अपने प्रिय मित्रों, नन्द महाराज तथा ग्वालों और

गोपियों को देखा, जो दीर्घकाल से चिन्तित होने के कारण दुखी थे।

अन्योन्यसन्दर्शनहर्षरंहसा
प्रोत्फुल्लहृद्वक्त्रसरोरुहश्रियः ।
आश्लिष्य गाढं नयनैः स्रवज्जला
हृष्यत्त्वचो रुद्धगिरो ययुर्मुदम् ॥ १४॥

शब्दार्थ

अन्योन्य—एक-दूसरे के; सन्दर्शन—देखने से; हर्ष—हर्ष के; रंहसा—आवेग से; प्रोत्फुल्ल—विकसित, प्रफुल्लित; हृत्—अपने हृदयों; वक्त्र—तथा मुखों के; सरोरुह—कमलों के; श्रियः—सौन्दर्य वाले; आश्लिष्य—आलिंगन करके; गाढम्—खूब तेजी से; नयनैः—आँखों से; स्रवत्—गिराते हुए; जलाः—जल (अश्रु); हृष्यत्—रोमांचित; त्वचः—चमड़ी; रुद्ध—रुँधी हुई; गिरः—वाणी; ययुः—अनुभव किया; मुदम्—हर्ष, प्रसन्नता।

जब एक-दूसरे को देखने की अत्याधिक हर्ष से उनके हृदय तथा मुखकमल नवीन सौन्दर्य से खिल उठे, तो पुरुषों ने एक-दूसरे का उल्लासपूर्वक आलिंगन किया। अपने नेत्रों से अश्रु गिराते हुए, रोमांचित शरीर वाले तथा रुँधी वाणी से उन्होंने उत्कट आनन्द का अनुभव किया।

स्त्रियश्च संवीक्ष्य मिथोऽतिसौहृद-
स्मितामलापाङ्गदृशोऽभिरेभिरे ।
स्तनैः स्तनान्कुङ्कुमपङ्करूषितान्
निहत्य दोर्भिः प्रणयाश्रुलोचनाः ॥ १५॥

शब्दार्थ

स्त्रियः—स्त्रियाँ; च—तथा; संवीक्ष्य—देखकर; मिथः—परस्पर; अति—अत्यन्त; सौहृद—मित्रवत् स्नेह के साथ; स्मित—मुसकाते हुए; अमल—निर्मल; अपाङ्ग—तिरछी नजर, चितवन; दृशः—आँखों वाली; अभिरेभिरे—आलिंगन किया; स्तनैः—स्तनों से; स्तनान्—स्तनों को; कुङ्कुम—केसर के; पङ्क—लेप से; रूषितान्—लेपित; निहत्य—दबाकर; दोर्भिः—अपनी बाहुओं से; प्रणय—प्रेम के; अश्रु—आँसुओं से पूर्ण; लोचनाः—आँखें।

स्त्रियों ने प्रेममयी मैत्री की शुद्ध मुसकानों से एक-दूसरे को निहारा। और जब उन्होंने आलिंगन किया, तो केसर के लेप से लेपित उनके स्तन एक-दूसरे के जोर से दब गये और उनके नेत्रों में स्नेह के आँसू भर आये।

ततोऽभिवाद्य ते वृद्धान्यविष्ठैरभिवादिताः ।
स्वागतं कुशलं पृष्ट्वा चक्रुः कृष्णकथा मिथः ॥ १६॥

शब्दार्थ

ततः—तब; अभिवाद्य—नमस्कार करके; ते—वे; वृद्धान्—अपने वरिष्ठजनों को; यविष्ठैः—अपने से छोटे सम्बन्धियों के द्वारा; अभिवादिताः—अभिवादन की गई; सु-आगतम्—सुखपूर्वक आगमन; कुशलम्—तथा कुशल-क्षेम; पृष्ट्वा—पूछ कर; चक्रुः—किया; कृष्ण—कृष्ण के बारे में; कथाः—वार्ता; मिथः—परस्पर।

तब उन सबों ने अपने वरिष्ठजनों को नमस्कार किया और अपने से छोटे सम्बन्धियों से आदर प्राप्त किया। एक-दूसरे से यात्रा की सुख-सुविधा एवं कुशल-क्षेम पूछने के बाद, वे कृष्ण के विषय में बातें करने लगीं।

तात्पर्य : ये वैष्णवों के विशेष आचार-विचार हैं। सामान्य बद्धजीवों को भ्रमित करने वाली पारिवारिक झंझटें उन लोगों को उलझन में नहीं डालतीं, जिनके परिवार वाले शुद्ध भगवद्भक्त होते हैं। निर्विशेषवादियों में इन घनिष्ठ व्यवहारों को समझने की क्षमता नहीं पाई जाती, क्योंकि उनका दर्शन किसी प्रकार के वैयक्तिक भावात्मक जगत को मायामय कह कर त्याज्य समझता है। जब निर्विशेषवाद के अनुयायी कृष्ण तथा उनके भक्तों के प्रेमपूर्ण सम्बन्धों को समझने का बहाना बनाते हैं, तो वे न केवल अपने लिए अपितु सुनने वालों के लिए भी विनाश की स्थिति उत्पन्न कर देते हैं।

पृथा भ्रातॄन्स्वसॄर्वीक्ष्य तत्पुत्रान्पितरावपि ।
भ्रातृपत्नीर्मुकुन्दं च जहौ सङ्कथया शुचः ॥ १७॥

शब्दार्थ

पृथा—कुन्ती; भ्रातॄन्—अपने भाइयों को; स्वसॄः—तथा बहनों को; वीक्ष्य—देखकर; तत्—उनके; पुत्रान्—पुत्रों को; पितरौ—अपने माता-पिता को; अपि—भी; भ्रातृ—अपने भाइयों की; पत्नीः—पत्नियों; मुकुन्दम्—भगवान् कृष्ण को; च—भी; जहौ—त्याग दिया; सङ्कथया—बातें करते हुए; शुचः—अपना शोक।

महारानी कुन्ती अपने भाइयों तथा बहनों और उनके बच्चों से मिलीं। वे अपने माता-पिता, अपने भाइयों की पत्नियों (भाभियों) तथा भगवान् मुकुन्द से भी मिलीं। उनसे बातें करती हुईं वे अपना शोक भूल गईं।

तात्पर्य : शुद्ध भक्त की निरन्तर चिन्ता भी, जो निर्विशेषवादियों की *शान्ति* से सर्वथा विपरीत होती है, भगवत्प्रेम की सुन्दर अभिव्यक्ति बन सकती है, जैसाकि पाण्डवों की माता तथा कृष्ण की बुआ श्रीमती कुन्तीदेवी के उदाहरण में देखी जाती है।

कुन्त्युवाच

आर्य भ्रातरहं मन्ये आत्मानमकृताशिषम् ।
यद्वा आपत्सु मद्वार्तां नानुस्मरथ सत्तमाः ॥ १८॥

शब्दार्थ

कुन्ती उवाच—महारानी कुन्ती ने कहा; आर्य—हे आदरणीय; भ्रातः—भाई; अहम्—मैं; मन्ये—सोचती हूँ; आत्मानम्—अपने को; अकृत—प्राप्त करने में असफल; आशिषम्—इच्छाएँ; यत्—चूँकि; वै—निस्सन्देह; आपत्सु—संकट के समय; मत्—मुझको; वार्ताम्—जो घटित हुआ; न अनुस्मरथ—तुम लोग स्मरण नहीं करते; सत्-तमाः—सर्वाधिक साधु स्वभाव वाले।

महारानी कुन्ती ने कहा : हे मेरे सम्माननीय भाई, मैं अनुभव करती हूँ कि मेरी इच्छाएँ विफल रही हैं, क्योंकि यद्यपि आप सभी अत्यन्त साधु स्वभाव वाले हो, किन्तु मेरी विपदाओं के दिनों में आपने मुझे भुला दिया।

तात्पर्य : यहाँ महारानी कुन्ती अपने भाई वसुदेव को सम्बोधित कर रही हैं।

सुहृदो ज्ञातयः पुत्रा भ्रातरः पितरावपि ।
नानुस्मरन्ति स्वजनं यस्य दैवमदक्षिणम् ॥ १९ ॥

शब्दार्थ

सुहृदः—मित्रगण; ज्ञातयः—तथा सम्बन्धी; पुत्राः—पुत्र; भ्रातरः—भाई; पितरौ—माता-पिता; अपि—भी; न अनुस्मरन्ति—स्मरण नहीं करते; स्व-जनम्—प्रियजन; यस्य—जिसका; दैवम्—विधाता; अदक्षिणम्—प्रतिकूल।

जिस पर विधाता अनुकूल नहीं रहता, उसके मित्र तथा परिवार वाले, यहाँ तक कि बच्चे, भाई तथा माता-पिता भी अपने प्रियजन को भूल जाते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी तथा विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर दोनों ने ही टीका दी हैं कि कुन्ती अपने कष्ट के लिए अपने सम्बन्धियों को दोष नहीं देतीं। वे उन्हें अत्यन्त साधु स्वभाव वाला कहती हैं। वे अपने दुख के कारण के लिए अपने दुर्भाग्य को कोसती हैं।

श्रीवसुदेव उवाच

अम्ब मास्मानसूयेथा दैवक्रीडनकान्नरान् ।
ईशस्य हि वशे लोकः कुरुते कार्यतेऽथ वा ॥ २० ॥

शब्दार्थ

श्री-वसुदेवः उवाच—श्री वसुदेव ने कहा; अम्ब—हे बहन; मा—मत; अस्मान्—हमसे; असूयेथाः—क्रुद्ध होओ; दैव—भाग्य के; क्रीडनकान्—खिलौनों; नरान्—मनुष्यों को; ईशस्य—भगवान् के; हि—निस्सन्देह; वशे—अधीन; लोकः—व्यक्ति; कुरुते—अपने मन से करता है; कार्यते—औरों के द्वारा कराया जाता है; अथ वा—या फिर।

श्री वसुदेव ने कहा : हे बहन, तुम हम पर नाराज न होओ। हम सामान्य व्यक्ति भाग्य के खिलौने हैं। निस्सन्देह, मनुष्य चाहे अपने आप कार्य करे या अन्यों द्वारा करने को बाध्य किया जाय, वह सदैव भगवान् के नियंत्रण में रहता है।

कंसप्रतापिताः सर्वे वयं याता दिशं दिशम् ।

एतर्ह्येव पुनः स्थानं दैवेनासादिताः स्वसः ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

कंस—कंस द्वारा; प्रतापिताः—खूब सताये गये; सर्वे—सभी; वयम्—हम; याताः—भाग गये; दिशम् दिशम्—विभिन्न दिशाओं में; एतर्हि एव—अभी अभी; पुनः—फिर; स्थानम्—अपने अपने स्थानों को; दैवेन—विधाता द्वारा; आसादिताः—लाये गये; स्वसः—हे बहन।

हे बहन, कंस द्वारा सताये हुए हम विभिन्न दिशाओं में भाग गये थे, किन्तु विधाता की कृपा से अन्ततोगत्वा हम अब अपने अपने घरों में लौट सके हैं।

श्रीशुक उवाच
वसुदेवोग्रसेनाद्यैर्यदुभिस्तेऽर्चिता नृपाः ।
आसन्नच्युतसन्दर्शपरमानन्दनिर्वृताः ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; वसुदेव-उग्रसेन-आद्यैः—वसुदेव, उग्रसेन इत्यादि; यदुभिः—यादवों द्वारा; ते—वे; अर्चिताः—सम्मानित; नृपाः—राजागण; आसन्—हो गये; अच्युत—भगवान् कृष्ण के; सन्दर्श—दर्शन से; परम—परम; आनन्द—आनन्द में; निर्वृताः—शान्त।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : वसुदेव, उग्रसेन तथा अन्य यदुओं ने उन विविध राजाओं का सम्मान किया, जो भगवान् अच्युत को देखकर अत्यधिक आनन्द विभोर और संतुष्ट हो गये।

भीष्मो द्रोणोऽम्बिकापुत्रो गान्धारी ससुता तथा ।
सदाराः पाण्डवाः कुन्ती सञ्जयो विदुरः कृपः ॥ २३ ॥
कुन्तीभोजो विराटश्च भीष्मको नग्नजिन्महान् ।
पुरुजिद्द्रुपदः शल्यो धृष्टकेतुः स काशिराट् ॥ २४ ॥
दमघोषो विशालाक्षो मैथिलो मद्रकेकयौ ।
युधामन्युः सुशर्मा च ससुता बाह्लिकादयः ॥ २५ ॥
राजानो ये च राजेन्द्र युधिष्ठिरमनुव्रताः ।
श्रीनिकेतं वपुः शौरेः सस्त्रीकं वीक्ष्य विस्मिताः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

भीष्मः द्रोणः अम्बिका-पुत्रः—भीष्म, द्रोण तथा अम्बिका के पुत्र (धृतराष्ट्र); गान्धारी—गान्धारी; स—सहित; सुताः—उसके पुत्र; तथा—भी; स-दाराः—पत्नियों सहित; पाण्डवाः—पाण्डु-पुत्र; कुन्ती—कुन्ती; सञ्जयः विदुरः कृपः—संजय, विदुर तथा कृप; कुन्तीभोजः विराटः च—कुन्तीभोज तथा विराट; भीष्मकः—भीष्मक; नग्नजित्—नग्नजित; महान्—महान्; पुरुजित् द्रुपदः शल्यः—पुरुजित, द्रुपद तथा शल्य; धृष्टकेतुः—धृष्टकेतु; सः—वह; काशि-राट्—काशी का राजा; दमघोषः विशालाक्षः—दमघोष तथा विशालाक्ष; मैथिलः—मिथिलाराज; मद्र-केकयौ—मद्र तथा केकय के राजा; युधामन्युः सुशर्मा च—युधामन्यु तथा सुशर्मा; स-सुताः—अपने पुत्रों समेत; बाह्लिक-आदयः—बाह्लिक तथा अन्य; राजानः—राजागण; ये—जो; च—तथा; राज-इन्द्र—हे राजाओं में श्रेष्ठ (परीक्षित); युधिष्ठिरम्—युधिष्ठिर को; अनुव्रताः—अनुसरण करते हुए; श्री—ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य के; निकेतम्—धाम; वपुः—शरीर; शौरेः—भगवान् कृष्ण का; स-स्त्रीकम्—पत्नियों सहित; वीक्ष्य—देखकर; विस्मिताः—चकित।

हे राजाओं में श्रेष्ठ परिक्षित, भीष्म, द्रोण, धृतराष्ट्र, गान्धारी तथा उनके पुत्र, पाण्डव तथा

उनकी पत्नियाँ, कुन्ती, सञ्जय, विदुर, कृपाचार्य, कुन्तीभोज, विराट, भीष्मक, महान् नग्नजित, पुरुजित, द्रुपद, शल्य, धृष्टकेतु, काशिराज, दमघोष, विशालाक्ष, मैथिल, मद्र, केकय, युधामन्यु, सुशर्मा, बाह्लिक तथा उसके संगी और उन सबों के पुत्र एवं महाराज युधिष्ठिर के अधीन अन्य अनेक राजा—ये सारे के सारे अपने समक्ष समस्त ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य के धाम अपनी पत्नियों के साथ खड़े भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य रूप को देखकर चकित हो गये।

तात्पर्य : ये सारे राजा अब युधिष्ठिर के अनुयायी थे, क्योंकि राजसूय यज्ञ करने के विशेषाधिकार से वे इन सबों को अधीन बना चुके थे। वैदिक आदेश के अनुसार जो क्षत्रिय स्वर्ग जाने के लिए राजसूय यज्ञ करना चाहता है, उसे स्वतंत्र विचरण करने के लिए एक ''विजय अश्व'' छोड़ना पड़ता है। जिस किसी राजा के राज्य में यह घोड़ा प्रवेश करता है, उसे या तो स्वेच्छा से अधीनता स्वीकार करनी होती है या फिर उस क्षत्रिय से या उसके प्रतिनिधियों से युद्ध करना होता है।

अथ ते रामकृष्णाभ्यां सम्यक्प्राप्तसमर्हणाः ।
प्रशशंसुर्मुदा युक्ता वृष्णीन्कृष्णपरिग्रहान् ॥ २७॥

शब्दार्थ

अथ—तब; ते—वे, उन्होंने; राम-कृष्णाभ्याम्—बलराम तथा कृष्ण द्वारा; सम्यक्—भलीभाँति; प्राप्त—पाकर के; समर्हणाः—उचित सम्मान; प्रशशंसुः—प्रशंसा की; मुदा—हर्ष से; युक्ताः—पूर्ण; वृष्णीन्—वृष्णियों को; कृष्ण—कृष्ण के; परिग्रहान्—निजी संगियों को।

जब बलराम तथा कृष्ण उदारतापूर्वक उनका आदर कर चुके, तो ये राजा अतीव प्रसन्नता एवं उत्साह के साथ श्रीकृष्ण के निजी संगियों की प्रशंसा करने लगे, जो वृष्णि-कुल के सदस्य थे।

अहो भोजपते यूयं जन्मभाजो नृणामिह ।
यत्पश्यथासकृत्कृष्णं दुर्दर्शमपि योगिनाम् ॥ २८॥

शब्दार्थ

अहो—ओह; भोज-पते—हे भोजों के स्वामी, उग्रसेन; यूयम्—तुम; जन्म-भाजः—सफल जीवन पाकर; नृणाम्—मनुष्यों के बीच; इह—इस संसार में; यत्—क्योंकि; पश्यथ—देखते हो; असकृत्—बारम्बार; कृष्णम्—कृष्ण को; दुर्दर्शम्—विरले ही देखे जाने वाले; अपि—भी; योगिनाम्—योगियों द्वारा।

[राजाओं ने कहा] : हे भोजराज, आप ही एकमात्र ऐसे हैं, जिन्होंने मनुष्यों में सचमुच उच्च जन्म प्राप्त किया है, क्योंकि आप भगवान् श्रीकृष्ण को निरन्तर देखते हैं, जो बड़े से बड़े

योगियों को भी विरले ही दिखते हैं।

यद्विश्रुतिः श्रुतिनुतेदमलं पुनाति
पादावनेजनपयश्च वचश्च शास्त्रम् ।
भूः कालभर्जितभगापि यदङ्घ्रिपद्म-
स्पर्शोत्थशक्तिरभिवर्षति नोऽखिलार्थान् ॥ २९ ॥
तद्दर्शनस्पर्शनानुपथप्रजल्प-
शय्यासनाशनसयौनसपिण्डबन्धः ।
येषां गृहे निरयवर्त्मनि वर्ततां वः
स्वर्गापवर्गविरमः स्वयमास विष्णुः ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसका; विश्रुतिः—यश; श्रुति—वेदों द्वारा; नुता—गुँजाया; इदम्—इस (ब्रह्माण्ड) को; अलम्—पूरी तरह; पुनाति—पवित्र बनाता है; पाद—जिसके चरणों का; अवनेजन—प्रक्षालन; पयः—जल; च—तथा; वचः—शब्द; च—तथा; शास्त्रम्—शास्त्रों को; भूः—पृथ्वी; काल—समय द्वारा; भर्जित—विनष्ट; भगा—जिसका सौभाग्य; अपि—भी; यत्—जिसके; अङ्घ्रि—पैरों के; पद्म—कमल-सदृश; स्पर्श—छूने से; उत्थ—जागृत; शक्तिः—जिसकी शक्ति; अभिवर्षति—प्रचुर वर्षा करती है; नः—हम पर; अखिल—समस्त; अर्थान्—वांछित वस्तुएँ; तत्—उसके; दर्शन—देखने; स्पर्शन—छूने; अनुपथ—साथ-साथ चलने; प्रजल्प—बातचीत करने; शय्या—विश्राम करने के लिए लेट जाना; आसन—बैठना; अशन—भोजन करना; स-यौन—वैवाहिक सम्बन्धों में; स-पिण्ड—तथा रक्त के सम्बन्ध में; बन्धः—सम्बन्ध; येषाम्—जिनके; गृहे—गृहस्थ-जीवन में; निरय—नरक के; वर्त्मनि—मार्ग पर; वर्तताम्—चलने वाले; वः—तुम्हारे; स्वर्ग—स्वर्ग (प्राप्त करने की इच्छा के); अपवर्ग—तथा मोक्ष; विरमः—विराम (का कारण); स्वयम्—स्वयं; आस—उपस्थित था; विष्णुः—भगवान् विष्णु।

वेदों द्वारा प्रसारित उनका यश, उनके चरणों को प्रक्षलित करने वाला जल और शास्त्रों के रूप में उनके द्वारा कहे गये शब्द—ये सभी इस ब्रह्माण्ड को पूरी तरह शुद्ध करने वाले हैं। यद्यपि काल के द्वारा पृथ्वी का सौभाग्य नष्ट-भ्रष्ट हो चुका था, किन्तु उनके चरणकमलों के स्पर्श से उसे पुनः जीवनदान मिला है, अतः पृथ्वी हमारी समस्त इच्छाओं की पूर्ति की वर्षा हम पर कर रही है। जो विष्णु स्वर्ग तथा मोक्ष के लक्ष्यों को भुलवा देते हैं, वे आपके साथ वैवाहिक और रक्त सम्बन्ध स्थापित कर चुके हैं, अन्यथा आप लोग गृहस्थ-जीवन के नारकीय पथ पर विचरण करते हैं। निस्सन्देह ऐसे सम्बन्ध होने से आप लोग उन्हें देखते हैं, उनका स्पर्श करते हैं, उनके साथ चलते हैं, उनसे बातें करते हैं, उनके साथ लेट कर आराम करते हैं, उठते-बैठते हैं और भोजन करते हैं।

तात्पर्य : समस्त वैदिक मंत्र भगवान् विष्णु की महिमा का बखान करते हैं। इस सत्य की पुष्टि विद्वान आचार्यों ने विपुल साक्ष्य द्वारा की है—यथा रामानुज ने *वेदार्थ संग्रह* तथा मध्व ने *ऋग्वेद भाष्य* द्वारा की है। भगवान् विष्णु जिन शब्दों को कहते हैं यथा *भगवद्गीता,* वे समस्त शास्त्रों के गुह्य सार

होते हैं। व्यासदेव के रूप में भगवान् ने *वेदान्त सूत्र* तथा *महाभारत* की रचना की और इस *महाभारत* में श्रीकृष्ण के निजी वाक्य हैं— *वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद् वेदविदेव चाहम्।* ''समस्त वेदों के द्वारा मैं जाना जा सकता हूँ। निस्सन्देह मैं वेदान्त का संकलनकर्ता हूँ और वेदों का जानने वाला हूँ।'' (*भगवद्गीता* १५.१५)

जब भगवान् विष्णु बलि महाराज के समक्ष तीन पग भूमि माँगने के लिए प्रकट हुए तो भगवान् का दूसरा पग ब्रह्माण्ड के आवरण में धँस गया। इससे ब्रह्माण्ड के बाहर स्थित दिव्य विरजा नदी का जल भीतर चला आया जो भगवान् वामन के पाँव का प्रक्षालन करके गंगा नदी के रूप में बहने लगा। अपनी पावन उत्पत्ति के कारण ही गंगा सामान्यतया सर्वाधिक पवित्र नदी मानी जाती है। किन्तु इससे भी शक्तिशाली यमुना का जल है, जिसमें भगवान् विष्णु ने अपना आदि-रूप गोविन्द धारण करके अपने घनिष्ठ संगियों के साथ क्रीड़ा की।

इन दो श्लोकों में वहाँ एकत्रित राजा भगवान् कृष्ण के यदुकुल की विशेषताओं की प्रशंसा कर रहे हैं। वे न केवल कृष्ण का दर्शन पाते हैं, अपितु वैवाहिक तथा रक्त सम्बन्ध के द्विविध बन्धनों से उनसे सीधे तौर पर जुड़े हुए हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती सुझाव रखते हैं कि *बन्ध* शब्द अधिक स्पष्ट अर्थ ''सम्बन्ध'' के अतिरिक्त ''पकड़ना'' अर्थ भी देता है, जिससे व्यक्त होता है कि यदुओं में भगवान् के प्रति जो प्रेम है, उससे बँधे रहकर वे सदैव उनके साथ रहते हैं।

श्रीशुक उवाच
नन्दस्तत्र यदून्प्राप्तान्ज्ञात्वा कृष्णपुरोगमान् ।
तत्रागमद्वृतो गोपैरनःस्थार्थैर्दिदृक्षया ॥ ३१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; नन्दः—नन्द महाराज; तत्र—वहाँ; यदून्—यदुओं को; प्राप्तान्—आये हुए; ज्ञात्वा—पाकर; कृष्ण—कृष्ण; पुरः-गमान्—आगे करके; तत्र—वहाँ; अगमत्—गये; वृतः—साथ साथ; गोपैः—ग्वालों के द्वारा; अनः—अपनी अपनी बैलगाड़ियों पर; स्थ—रखी; अर्थैः—सामग्री से; दिदृक्षया—जानने की इच्छा से।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : जब नन्द महाराज को ज्ञात हुआ कि कृष्ण के नेतृत्व में यदुगण आ चुके हैं, तो वे तुरन्त उनसे भेंट करने गये। सारे ग्वाले अपनी अपनी बैलगाड़ियों में विविध वस्तुएँ लाद कर उनके साथ हो लिए।

तात्पर्य : व्रज के ग्वाले कुरुक्षेत्र में कुछ दिन रुकने की योजना बना रहे थे, इसलिए वे पर्याप्त

सामग्री से साथ लेकर—विशेष रूप से कृष्ण तथा बलराम की रुचि की दूध की बनी तथा अन्य प्रकार की खाद्य वस्तुएँ लेकर—आये थे।

तं दृष्ट्वा वृष्णयो हृष्टास्तन्वः प्राणमिवोत्थिताः ।
परिषस्वजिरे गाढं चिरदर्शनकातराः ॥ ३२ ॥

शब्दार्थ

तम्—उसको, नन्द को; दृष्ट्वा—देखकर; वृष्णयः—वृष्णिजन; हृष्टाः—प्रसन्न; तन्वः—सजीव शरीर; प्राणम्—प्राण; इव—मानो; उत्थिताः—उठ कर; परिषश्वजिरे—उनका आलिंगन किया; गाढम्—दृढ़ता से; चिर—दीर्घकाल के बाद; दर्शन—देखने से; कातराः—क्षुब्ध।

नन्द को देखकर सारे वृष्णि प्रसन्न हो उठे और इस तरह खड़े हो गये, मानो मृत शरीरों में फिर से प्राण संचार हो गया हो। दीर्घकाल से न देखने के कारण अधिक कष्ट का अनुभव करते हुए, उन्होंने नन्द प्रगाढ़ आलिंगन किया।

वसुदेवः परिष्वज्य सम्प्रीतः प्रेमविह्वलः ।
स्मरन्कंसकृतान्क्लेशान्पुत्रन्यासं च गोकुले ॥ ३३ ॥

शब्दार्थ

वसुदेवः—वसुदेव; परिष्वज्य—(नन्द महाराज का) आलिंगन करके; सम्प्रीतः—अत्यधिक प्रसन्न; प्रेम—प्रेम के कारण; विह्वलः—अपने आप में न रहना; स्मरन्—स्मरण करते हुए; कंस-कृतान्—कंस द्वारा उत्पन्न; क्लेशान्—कष्टों को; पुत्र—अपने पुत्रों की; न्यासम्—विदाई; च—तथा; गोकुले—गोकुल में।

वसुदेव ने बड़े ही हर्ष से नन्द महाराज का आलिंगन किया। प्रेमविह्वल होकर वसुदेव ने कंस द्वारा पहुँचाए गये कष्टों का स्मरण किया, जिसके कारण उन्हें अपने पुत्रों को उनकी रक्षा के लिए गोकुल में छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा।

कृष्णरामौ परिष्वज्य पितरावभिवाद्य च ।
न किञ्चनोचतुः प्रेम्णा साश्रुकण्ठौ कुरूद्वह ॥ ३४ ॥

शब्दार्थ

कृष्ण-रामौ—कृष्ण तथा बलराम; परिष्वज्य—आलिंगन करके; पितरौ—अपने माता-पिता को; अभिवाद्य—अभिवादन करके; च—तथा; न किञ्चन—कुछ नहीं; ऊचतुः—कहा; प्रेम्णा—प्रेमवश; स-अश्रु—आँसुओं से पूर्ण; कण्ठौ—जिनके कण्ठ हैं; कुरु-उद्वह—हे कुरुओं में सर्वाधिक वीर।

हे कुरुओं के वीर, कृष्ण तथा बलराम ने अपने पोषक माता-पिता का आलिंगन किया और उनको नमन किया, लेकिन प्रेमाश्रुओं से उनके गले इतने रुंध गये थे कि वे दोनों कुछ भी नहीं कह पाये।

तात्पर्य : दीर्घकालीन विछोह के बाद आज्ञाकारी बालक को सर्वप्रथम अपने माता-पिता का अभिवादन करना चाहिए। किन्तु नन्द तथा यशोदा ने अपने पुत्रों को इसका अवसर ही नहीं प्रदान किया, क्योंकि ज्योंही उन्होंने अपने पुत्रों को देखा, उन्होंने उनका आलिंगन किया। उसके बाद ही कृष्ण तथा बलराम उन्हें अपना उचित अभिवादन प्रदान कर सके।

तावात्मासनमारोप्य बाहुभ्यां परिरभ्य च ।
यशोदा च महाभागा सुतौ विजहतुः शुचः ॥ ३५ ॥

शब्दार्थ

तौ—वे दोनों; आत्म-आसनम्—अपनी गोदों में; आरोप्य—उठाकर; बाहुभ्याम्—अपनी बाहुओं से; परिरभ्य—आलिंगन करके; च—तथा; यशोदा—माता यशोदा; च—भी; महा-भागा—सन्त स्वभाव वाली; सुतौ—अपने पुत्रों को; विजहतुः—त्याग दिया; शुचः—अपना शोक।

अपने दोनों पुत्रों को अपनी गोद में उठाकर और अपनी बाहुओं में भर कर, नन्द तथा सन्त स्वभाव वाली माता यशोदा अपना शोक भूल गये।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती बतलाते हैं कि प्रारम्भिक आलिंगन तथा नमस्कार के बाद वसुदेव नन्द तथा यशोदा को अपने डेरे में ले गये। ये कृष्ण तथा बलराम का हाथ पकड़े थे। उनके पीछे पीछे अन्दर जाने वाली रोहिणी, व्रज की अन्य स्त्रियाँ तथा पुरुष एवं अनेक दास थे। भीतर जाकर नन्द तथा यशोदा ने दोनों बालकों को अपनी गोद में ले लिया। द्वारका के दोनों प्रभुओं के यशोगान सुनने के बावजूद तथा अब अपनी आँखों से इन ऐश्वर्यों को देख कर नन्द तथा यशोदा उन्हें अब भी आठ वर्ष के बालक ही समझ रहे थे।

रोहिणी देवकी चाथ परिष्वज्य व्रजेश्वरीम् ।
स्मरन्त्यौ तत्कृतां मैत्रीं बाष्पकण्ठ्यौ समूचतुः ॥ ३६ ॥

शब्दार्थ

रोहिणी—रोहिणी; देवकी—देवकी; च—और; अथ—तब; परिष्वज्य—आलिंगन करके; व्रज-ईश्वरीम्—व्रज की रानी (यशोदा) को; स्मरन्त्यौ—स्मरण करते हुए; तत्—अपने; कृतम्—किये हुए; मैतृईम्—दोस्ती; बाष्प—आँसू; कण्ठ्यौ—कण्ठों में; समूचतुः—उन्होंने उससे कहा।

तत्पश्चात् रोहिणी तथा देवकी दोनों ने व्रज की रानी का आलिंगन किया और उन्होंने उनके प्रति, जो सच्ची मित्रता प्रदर्शित की थी, उसका स्मरण करते हुए अश्रु से रुंधे गले से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार यहाँ पर श्री वसुदेव ने नन्द को उग्रसेन तथा अन्य वरिष्ठ यदुओं से मिलाने के लिए बाहर बुलाया। इस बीच रोहिणी तथा देवकी यशोदारानी से बातें करने लगीं।

का विस्मरेत वां मैत्रीमनिवृत्तां व्रजेश्वरि ।
अवाप्याप्यैन्द्रमैश्वर्यं यस्या नेह प्रतिक्रिया ॥ ३७॥

शब्दार्थ

का—कौन-सी स्त्री; विस्मरेत—भूल सकती है; वाम्—तुम दोनों (यशोदा तथा नन्द) को; मैत्रीम्—मित्रता; अनिवृत्ताम्—निरन्तर; व्रज-ईश्वरि—हे व्रज की रानी; अवाप्य—प्राप्त करके; अपि—भी; ऐन्द्रम्—इन्द्र का; ऐश्वर्यम्—ऐश्वर्य; यस्याः—जिसके लिए; न—नहीं; इह—इस जगत में; प्रति-क्रिया—उऋण होना या बदला चुकाना।

[रोहिणी तथा देवकी ने कहा] : हे व्रज की रानी, भला ऐसी कौन स्त्री होगी, जो आप तथा नन्द द्वारा हम लोगों के प्रति प्रदर्शित सतत मित्रता को भूल सके? इस संसार में आपका बदला चुकाने का कोई उपाय नहीं है, यहाँ तक कि इन्द्र की सम्पदा से भी नहीं।

एतावद्दृष्टपितरौ युवयोः स्म पित्रोः
सम्प्रीणनाभ्युदयपोषणपालनानि ।
प्राप्योषतुर्भवति पक्ष्म ह यद्वदक्ष्णो-
र्न्यस्तावकुत्र च भयौ न सतां परः स्वः ॥ ३८॥

शब्दार्थ

एतौ—ये दोनों; अदृष्ट—न देखकर; पितरौ—उनके माता-पिता; युवयोः—तुम दोनों के; स्म—निस्सन्देह; पित्रोः—माता-पिता के; सम्प्रीणन—दुलारना; अभ्युदय—पालन; पोषण—पोषण; पालनानि—तथा सुरक्षा; प्राप्य—प्राप्त करके; ऊषतुः—वे रहते थे; भवति—हे उत्तम नारी; पक्ष्म—पलकें; ह—निस्सन्देह; यद्वत्—जिस तरह; अक्ष्णोः—आँखों की; न्यस्तौ—गिरवी रखना; अकुत्र—कही नहीं; च—तथा; भयौ—जिसका डर; न—नहीं; सताम्—साधु-पुरुषों के लिए; परः—अन्य; स्वः—निजी।

इसके पूर्व कि इन दोनों बालकों ने अपने असली माता-पिता को देखा, आप दोनों ने उनके संरक्षक का कार्य किया और उन्हें सभी तरह से स्नेहपूर्ण देखभाल, प्रशिक्षण, पोषण तथा सुरक्षा प्रदान की। हे उत्तम नारी, वे कभी भी डरे नहीं, क्योंकि आप उनकी वैसे ही रक्षा करती रहीं, जिस तरह पलकें आँखों की रक्षा करती हैं। निस्सन्देह, आप-जैसी सन्त स्वभाव वाली नारियाँ कभी भी अपनों और परायों में कोई भेदभाव नहीं बरततीं।

तात्पर्य : जैसाकि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्या करते हैं, कृष्ण तथा बलराम ने अपने माता-पिता को दो कारणों से नहीं देखा था: एक तो व्रज में उनका भेजे जाना और दूसरे यह कि वे वास्तव में

जन्मे नहीं थे अतएव उनके कोई माता-पिता नहीं थे।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इसका भी वर्णन करते हैं कि देवकी ने यह श्लोक कहने के पूर्व क्या सोचा होगा, ''हाय! चूँकि इतने समय से ये मेरे दोनों पुत्र तुम यशोदा को अपनी संरक्षिका तथा माता मानते आये हैं और तुम्हारे प्रेमपूर्ण व्यवहार के विशाल सागर में इतने निमग्न रहे हैं और अब जब फिर तुम इनके सामने उपस्थित हो तो वे मेरी ओर निहार भी नहीं रहे। यही नहीं, तुम अविवेकी तथा उनके प्रति प्रेमान्ध की तरह आचरण कर रही हो और मेरी अपेक्षा लाखों गुना मातृ-स्नेह प्रदान कर रही हो। इसलिए तुम हम मित्रों को बिना पहचाने हमारी ओर ताक-भर रही हो। इसलिए कुछ स्नेहिल शब्द कहने के बहाने मैं तुम्हें वास्तविकता पर वापस लाऊँगी।''

जब देवकी ने यशोदा को सम्बोधित करने पर भी कोई उत्तर नहीं पाया तो रोहिणी ने कहा, ''हे देवकी! इस समय इन्हें इस भाव-समाधि से निकाल पाना असम्भव है। हम अरण्य-रोदन कर रही हैं। इनके दोनों पुत्र स्नेह-रज्जुओं द्वारा इन्हीं के समान इनसे बँधे हैं। इसलिए चलिये, हम बाहर चल कर पृथा, द्रौपदी और सबों से भेंट करें।''

श्रीशुक उवाच
गोप्यश्च कृष्णमुपलभ्य चिरादभीष्टं
यत्प्रेक्षणे दृशिषु पक्ष्मकृतं शपन्ति ।
दृग्भिर्हृदीकृतमलं परिरभ्य सर्वा-
स्तद्भावमापुरपि नित्ययुजां दुरापम् ॥ ३९ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; गोप्यः—तरुण गोपियाँ; च—तथा; कृष्णम्—कृष्ण को; उपलभ्य—निहार कर; चिरात्—बहुत दिनों से; अभीष्टम्—अपनी इच्छित वस्तु को; यत्—जिसको; प्रेक्षणे—देखते हुए; दृशिषु—उनकी आँखों पर; पक्ष्म—पलकों के; कृतम्—बनाने वाले को; शपन्ति—कोसती हैं; दृग्भिः—उनकी आँखों से; हृदी-कृतम्—अपने हृदयों में बसाये हुए; अलम्—जी-भरकर; परिरभ्य—आलिंगन करके; सर्वाः—वे सभी; तत्—उसकी; भावम्—प्रेम-तल्लीनता; आपुः—प्राप्त की; अपि—यद्यपि; नित्य—निरन्तर; युजाम्—योगविद्या में लगे रहने वालों के लिए; दुरापम्—प्राप्त करना कठिन, दुष्प्राप्य।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपने प्रिय कृष्ण पर टकटकी लगाये हुई तरुण गोपियाँ अपनी पलकों के सृजनकर्ता को कोसा करती थीं (क्योंकि वे उनका दर्शन करने में कुछ पलों के लिए बाधक होती थीं)। अब दीर्घकालीन विछोह के बाद कृष्ण को पुनः देखकर उन्हें अपनी आँखों के द्वारा ले जाकर, उन्होंने अपने हृदय में बिठा लिया और वहीं उनका जी-भरकर आलिंगन

किया। इस तरह वे उनके आनन्दमय ध्यान में पूरी तरह निमग्न हो गईं, यद्यपि योगविद्या का निरन्तर अभ्यास करने वाले को ऐसी तल्लीनता प्राप्त कर पाना कठिन होता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार तभी बलराम ने गोपियों को कुछ दूरी पर खड़े देखा। उन्हें कृष्ण से भेंट करने की उत्सुकता से काँपती हुई और न मिल पा सकने पर वे अपना प्राण तक दे सकने की अवस्था देखकर उन्होंने चतुराई से उठ कर अलग चले जाने और किसी दूसरे कार्य में लग जाने का निश्चय किया। तब गोपियों को इस श्लोक में वर्णित अवस्था प्राप्त हुई। गोपियों द्वारा ''पलकों के सृजनकर्ता'' ब्रह्मा के प्रति असह्य अनादर का उल्लेख करके शुकदेव गोस्वामी ने गोपियों के पक्ष के प्रति सूक्ष्म ईर्ष्या व्यक्त की है।

श्रील जीव गोस्वामी ने *नित्ययुजाम्* पद का अन्य अर्थ दिया है ''भगवान् की पटरानियों तक का, जिन्हें कृष्ण के निरन्तर सान्निध्य का गर्व प्रतीत होता था।''

भगवान् श्रीकृष्ण में श्रील प्रभुपाद लिखते हैं—

''चूँकि वे श्रीकृष्ण से इतने अधिक वर्षों तक अलग रही थीं, अतएव नन्द महाराज और माता यशोदा के साथ आकर और श्रीकृष्ण को देखकर गोपियों को परमानन्द का अनुभव हुआ। कोई भी व्यक्ति इस बात की कल्पना नहीं कर सकता कि श्रीकृष्ण को पुन: देखने के लिए गोपियाँ कितनी उत्सुक थीं। जैसे ही उन्हें श्रीकृष्ण दिखे वैसे ही उन्होंने अपने नेत्रों के द्वारा उन्हें अपने हृदय में बिठा लिया और तब तक आलिंगन करती रहीं, जब तक सन्तुष्ट नहीं हो लीं। यद्यपि वे कृष्ण का आलिंगन मन ही मन कर रही थीं तथापि आनन्द के कारण वे इतनी भाव-विभोर हो उठीं कि कुछ समय के लिए वे अपने आप को पूरी तरह से भूल गईं। गोपियों ने कृष्ण का मन ही मन आलिंगन करके जो परमानन्द प्राप्त किया था उस दिव्यानन्द को प्राप्त कर पाना उन महान् योगियों के लिए भी असम्भव है, जो सदैव भगवान् के चिन्तन में लीन रहते हैं। श्रीकृष्ण को यह भान था कि गोपियाँ मन ही मन उनका आलिंगन करके परमानन्द में लीन थीं, किन्तु सबों के हृदय में उपस्थित होने से उन्होंने भी प्रत्युत्तर में मन ही मन गोपियों का आलिंगन किया।''

भगवांस्तास्तथाभूता विविक्त उपसङ्गत: ।

आश्लिष्यानामयं पृष्ट्वा प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४० ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान् ने; ताः—उनको; तथा-भूताः—ऐसी दशा में होते हुए; विविक्ते—एकान्त स्थान में; उपसङ्गतः—जाकर; आश्लिष्य—आलिंगन करके; अनामयम्—स्वास्थ्य के (कुशलता) विषय में; पृष्ट्वा—पूछ कर; प्रहसन्—हँसते हुए; इदम्—यह; अब्रवीत्—कहा।

जब गोपियाँ भावमग्न खड़ी थीं, तो भगवान् एकान्त स्थान में उनके पास पहुँचे। हर एक का आलिंगन करने तथा उनकी कुशल-क्षेम पूछने के बाद वे हँसने लगे और इस प्रकार बोले।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती की टीका है कि कृष्ण ने अपनी *विभूति शक्ति* से प्रत्येक गोपी का आलिंगन करने के लिए अपना विस्तार किया और इस तरह हर एक की समाधि तोड़ी। उन्होंने पूछा, ''अब अपनी विछोह-पीड़ा से मुक्त हुई कि नहीं?'' और उनका जी हल्का करने के लिए हँसने लगे।

अपि स्मरथ नः सख्यः स्वानामर्थचिकीर्षया ।
गतांश्चिरायिताञ्छत्रुपक्षक्षपणचेतसः ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

अपि—क्या; स्मरथ—तुम स्मरण करती हो; नः—हमको; सख्यः—सखियाँ; स्वानाम्—अपने प्रियजनों के; अर्थ—हेतु; चिकीर्षया—करने की इच्छा से; गतान्—गये हुए; चिरायितान्—दीर्घकाल तक रहते हुए; शत्रु—हमारे शत्रुओं के; पक्ष—टोली; क्षपण—विनष्ट करने की; चेतसः—मनोभाव वाले।

[भगवान् कृष्ण ने कहा]: हे सखियो, क्या अब भी तुम लोग मेरी याद करती हो? मैं अपने सम्बन्धियों के लिए ही हमारे शत्रुओं का विनाश करने के लिए इतने लम्बे समय तक दूर रहता रहा।

अप्यवध्यायथास्मान्स्विदकृतज्ञाविशङ्कया ।
नूनं भूतानि भगवान्युनक्ति वियुनक्ति च ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

अपि—भी; अवध्यायथ—घृणा करती हो; अस्मान्—हमें; स्वित्—शायद; अकृत-ज्ञ—कृतघ्न के रूप में; आविशङ्कया—सन्देह से; नूनम्—निस्सन्देह; भूतानि—सारे जीव; भगवान्—भगवान्; युनक्ति—मिलाता है; वियुनक्ति—विलग करता है; च—तथा।

शायद तुम सोचती हो कि मैं कृतघ्न हूँ और इसलिए मुझे घृणा से देखती हो? अन्ततोगत्वा, सारे जीवों को पास लाने वाला और फिर उन्हें विलग करने वाला, तो भगवान् ही है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती गोपियों के भावों को इस प्रकार उद्घाटित करते हैं, ''हम तुम

जैसी नहीं हैं, जिसने दिन-रात हमारा स्मरण करते हुए अपना मन तोड़ दिया और विछोह के शोक में सारे इन्द्रिय-भोगों का परित्याग कर दिया हो। प्रत्युत हमने तुम्हारी रंच-भर भी याद नहीं की। वास्तव में, हम तो तुम्हारे बिना परम प्रसन्न रही हैं।'' इसके उत्तर में कृष्ण यहाँ पूछते हैं कि क्या वे सब उनकी अकृतज्ञता से नाराज हैं।

वायुर्यथा घनानीकं तृणं तूलं रजांसि च ।
संयोज्याक्षिपते भूयस्तथा भूतानि भूतकृत् ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

वायुः—वायु; यथा—जिस तरह; घन—बादलों के; अनीकम्—समूहों को; तृणम्—तिनकों को; तूलम्—रुई को; रजांसि—धूल को; च—तथा; संयोज्य—पास लाकर; आक्षिपते—दूर-दूर फेंक देती है; भूयः—एक बार फिर; तथा—उसी प्रकार; भूतानि—जीवों को; भूत—जीवों के; कृत्—बनाने वाले।

जिस तरह वायु बादलों के समूहों, घास की पत्तियों, रुई के फाहों तथा धूल के कणों को पुनः बिखेर देने के लिए ही पास पास लाती है, उसी तरह स्त्रष्टा अपने द्वारा सृजित जीवों के साथ व्यवहार करता है।

मयि भक्तिर्हि भूतानाममृतत्वाय कल्पते ।
दिष्ट्या यदासीन्मत्स्नेहो भवतीनां मदापनः ॥ ४४ ॥

शब्दार्थ

मयि—मुझमें; भक्तिः—भक्ति; हि—निस्सन्देह; भूतानाम्—जीवों के लिए; अमृतत्वाय—अमरता के लिए; कल्पते—ले जाता है; दिष्ट्या—सौभाग्य से; यत्—जो; आसीत्—बनाया; मत्—मेरे लिए; स्नेहः—स्नेह; भवतीनाम्—आप लोगों के लिए; मत्—मुझको; आपनः—प्राप्त करने का कारणस्वरूप।

कोई भी जीव मेरी भक्ति करके शाश्वत जीवन प्राप्त करने के लिए सुयोग्य बन जाता है। किन्तु तुम लोगों ने अपने सौभाग्य से मेरे प्रति ऐसी विशेष प्रेममय प्रवृत्ति विकसित कर ली है, जिसके द्वारा तुम सबों ने मुझे पा लिया है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार तब गोपियों ने उत्तर दिया, ''हे वक्ताओं में सर्वाधिक चतुर! तुम जिस परमेश्वर को दोष दे रहे हो वह साक्षात् तुम्हीं हो। विश्व का हर प्राणी इसे जानता है। तो भला हम इस तथ्य से अनजान क्यों बनी रहतीं?'' तब भगवान् कृष्ण ने उनसे कहा, ''यदि यह सच है, तो मैं ईश्वर हो सकता हूँ, किन्तु तो भी मैं तुम्हारे प्रेम-व्यापार से जीत लिया गया हूँ।''

अहं हि सर्वभूतानामादिरन्तोऽन्तरं बहिः ।
भौतिकानां यथा खं वार्भूर्वायुर्ज्योतिरङ्गनाः ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

अहम्—मैं; हि—निस्सन्देह; सर्व—समस्त; भूतानाम्—जीवों का; आदिः—प्रारम्भ; अन्तः—अन्त; अन्तरम्—भीतर; बहिः—बाहर; भौतिकानाम्—समस्त भौतिक वस्तुओं का; यथा—जिस तरह; खम्—आकाश; वाः—जल; भूः—पृथ्वी; वायुः—वायु; ज्योतिः—तथा अग्नि; अङ्गनाः—हे स्त्रियो।

हे स्त्रियो, मैं सारे जीवों का आदि तथा अन्त हूँ और मैं उनके भीतर तथा बाहर उसी तरह विद्यमान हूँ, जिस तरह आकाश, जल, पृथ्वी, वायु तथा अग्नि समस्त भौतिक वस्तुओं के आदि एवं अन्त हैं और उनके भीतर-बाहर विद्यमान रहते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार इस श्लोक में भगवान् कृष्ण यह कहना चाहते हैं, ''यदि तुम जानती हो कि मैं भगवान् हूँ, तो मेरे विछोह से तुम्हें कष्ट उठाने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि मैं सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हूँ। तुम्हारा दुख तुम्हारे विवेक के अभाव के कारण हुआ होगा। अतएव मुझसे यह शिक्षा लो, जिससे तुम्हारा अज्ञान जाता रहेगा।

किन्तु सच तो यह है कि तुम गोपियाँ पिछले जन्म में योगेश्वर थीं, अतएव तुम पहले से ही *ज्ञान योग* को जानती रही होगी। यही नहीं, मैं तुम्हें चाहे इसके बारे में सीधे शिक्षा दूँ या अपने प्रतिनिधि के माध्यम से यथा उद्धव द्वारा, तो इससे वांछित फल प्राप्त नहीं होगा। *ज्ञान योग* उन लोगों को कष्ट पहुँचाने वाला है, जो भगवान् के शुद्ध प्रेम में पूरी तरह लीन रहते हैं।''

एवं ह्येतानि भूतानि भूतेष्वात्मात्मना ततः ।
उभयं मय्यथ परे पश्यताभातमक्षरे ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

एवम्—इस प्रकार; हि—निस्सन्देह; एतानि—ये; भूतानि—सारे जीव; भूतेषु—सृष्टि के तत्त्वों के भीतर; आत्मा—आत्मा; आत्मना—अपने असली स्वरूप में; ततः—व्याप्त; उभयम्—दोनों; मयि—मेरे भीतर; अथ—अर्थात्; परे—परम सत्य के भीतर; पश्यत—तुम्हें देखना चाहिए; आभातम्—प्रकट; अक्षरे-विथिन् थे इम्पेरिशब्ले.

इस तरह समस्त उत्पन्न की गई वस्तुएँ सृष्टि के मूलभूत तत्त्वों के भीतर निवास करती हैं और अपने असली स्वरूप में बनी रहती हैं, किन्तु आत्मा सारी सृष्टि में व्याप्त रहता है। तुम्हें इन दोनों ही को—भौतिक सृष्टि तथा आत्मा को—मुझ अक्षर ब्रह्म के भीतर प्रकट देखना चाहिए।

तात्पर्य : मनुष्य को इस जगत की भौतिक वस्तुओं, इनमें निहित मूलभूत तत्त्वों, अनेक आत्माओं

तथा एक परमात्मा के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध को भलीभाँति समझना चाहिए। भौतिक भोग की विविध वस्तुएँ—यथा बर्तन, नदियाँ एवं पर्वत—मूलभूत भौतिक तत्त्वों—पृथ्वी, जल, अग्नि इत्यादि से बनी हैं। ये तत्त्व भौतिक वस्तुओं में हेतु-रूप में व्यापक रहते हैं, जबकि आत्माएँ उनके भोक्ता के विशेष रूप में (*स्वात्मना*) उनके भीतर व्याप्त रहती हैं। अन्तत: ये सारे भौतिक तत्त्व, उनसे बने पदार्थ तथा सारे जीव अविनाशी, सम्पूर्ण परमात्मा कृष्ण के भीतर प्रकट होते हैं और उन्हीं में व्याप्त रहते हैं।

इन तथ्यों की अनुभूति वाले ज्ञानी को किसी भी स्थिति में भगवान् से विछोह का अनुभव नहीं करना चाहिए। लेकिन व्रज की गोपियाँ कृष्णभावनामृत में सामान्य ज्ञानियों से अधिक उन्नत हैं। मानव रूप सर्व-आकर्षक ग्वालबाल के रूप में कृष्ण के प्रति गहन प्रेम के कारण कृष्ण की अन्तरंगा शक्ति योगमाया ने भगवान् के सर्वव्यापक होने जैसे उनके सारे तेजस्वी पहलुओं के ज्ञान को आच्छादित कर दिया। इस तरह उनके विछोह से उत्पन्न प्रेम में गोपियाँ गहन प्रेम का आनन्द पा सकीं। कृष्ण विनोदवश उनमें आध्यात्मिक विवेक का अभाव बतलाते हैं।

श्रीशुक उवाच
अध्यात्मशिक्षया गोप्य एवं कृष्णेन शिक्षिता: ।
तदनुस्मरणध्वस्तजीवकोशास्तमध्यगन् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुक: उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; अध्यात्म—आत्मा विषयक; शिक्षया—शिक्षा से; गोप्य:—गोपियाँ; एवम्—इस प्रकार; कृष्णेन—कृष्ण द्वारा; शिक्षिता:—पढ़ाई गई; तत्—उनका; अनुस्मरण—निरन्तर ध्यान से; ध्वस्त—विनष्ट; जीव-कोशा:—आत्मा का सूक्ष्म आवरण (मिथ्या अहंकार); तम्—उसको; अध्यगन्—समझ सकीं।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कृष्ण द्वारा आध्यात्मिक विषयों में शिक्षा दिये जाने पर गोपियाँ मिथ्या अहंकार के समस्त कलुषों से मुक्त हो गईं क्योंकि वे उनका निरन्तर ध्यान करती थीं। वे उनमें अपनी गहन निमग्नता के कारण उन्हें पूरी तरह समझ सकीं।

तात्पर्य : *लीली पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण* में श्रील प्रभुपाद इस उद्धरण को इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं—''भेदाभेद दर्शन के विषय में श्रीकृष्ण द्वारा शिक्षा दिये जाने पर गोपियाँ सदैव कृष्णभावनामृत में रहती रहीं और इस तरह वे भौतिक दूषण से मुक्त हो गईं। उस जीवात्मा की चेतना *जीव कोश* कहलाती है, जो मिथ्या रूप से स्वयं को भौतिक जगत का भोक्ता मानता है। *जीव कोश* का अर्थ है मिथ्या अहंकार द्वारा बन्धन। केवल गोपियाँ ही नहीं अपितु कोई भी व्यक्ति जो श्रीकृष्ण के इन उपदेशों

का पालन करता है तुरन्त जीव कोश के बन्धन से मुक्त हो जाता है। कृष्णभावनामृत में पूर्णतया स्थित व्यक्ति सदैव ही मिथ्या अहंकार से मुक्त हो जाता है, वह प्रत्येक वस्तु का उपयोग कृष्ण-सेवा में करने लगता है और क्षण-भर के लिए भी श्रीकृष्ण से विलग नहीं होता।''

आहुश्च ते नलिननाभ पदारविन्दं
योगेश्वरैर्हृदि विचिन्त्यमगाधबोधैः ।
संसारकूपपतितोत्तरणावलम्बं
गेहं जुषामपि मनस्युदियात्सदा नः ॥ ४८ ॥

शब्दार्थ

आहुः—गोपियों ने कहा; च—तथा; ते—तुम्हारा; नलिन-नभ—कमल के फूल जैसी नाभि वाले, हे भगवान्; पद-अरविन्दम्—चरणकमलों को; योग-ईश्वरैः—बड़े-बड़े योगियों द्वारा; हृदि—हृदय के भीतर; विचिन्त्यम्—ध्यान करने योग्य; अगाध-बोधैः—जो प्रकाण्ड दार्शनिक थे; संसार-कूप—इस संसाररूपी अँधेरे कुएँ में; पतित—गिरे हुओं के; उत्तरण—उद्धारकों के; अवलम्बम्—एकमात्र आश्रय को; गेहम्—पारिवारिक मामले; जुषाम्—लगे हुओं के; अपि—यद्यपि; मनसि—मनों में; उदियात्—उदित हो; सदा—सदैव; नः—हमारे।

गोपियाँ इस प्रकार बोलीं : हे कमलनाभ प्रभु, आपके चरणकमल उन लोगों के लिए एकमात्र शरण हैं, जो भौतिक संसाररूपी गहरे कुएँ में गिर गये हैं। आपके चरणों की पूजा तथा ध्यान बड़े बड़े योगी तथा प्रकाण्ड दार्शनिक करते हैं। हमारी यही इच्छा है कि ये चरणकमल हमारे हृदयों के भीतर उदित हों, यद्यपि हम सभी गृहस्थकार्यों में व्यस्त रहने वाली सामान्य प्राणी मात्र हैं।

तात्पर्य : इस श्लोक के शब्दार्थ तथा भावार्थ श्रील प्रभुपाद कृत *श्रीचैतन्य-चरितामृत* (मध्य १.८१) में आये श्लोक के अंग्रेजी पाठ के अनुसार हैं।

गोपियाँ जिस ईर्ष्या की मुद्रा में ये आदरपूर्ण वाक्य छलपूर्वक कहती हैं उसका उद्घाटन करते हुए श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती उनके कथन को इस प्रकार देते हैं—''हे प्रभु! हे प्रत्यक्ष परमात्मा, हे ज्ञानोपदेशकों के मुकुटमणि! घर, सम्पत्ति तथा परिवार के प्रति हमारी अत्यधिक अनुरक्ति से आप भलीभाँति अवगत हैं। इसीलिए आपने हमारे अज्ञान को दूर करने के लिए पहले उद्धव को भेजा था और अब वही कार्य स्वयं किया है। इस तरह आपने हमारे हृदय की मलिनता दूर कर दी है। फलस्वरूप हम अपने प्रति आपके शुद्ध प्रेम को समझती हैं, जो हमारे मोक्ष के अतिरिक्त और किसी उद्देश्य से नहीं है। लेकिन हम अज्ञानी ग्वालिने हैं, भला यह ज्ञान हमारे हृदयों में किस तरह स्थिर बना

रह सकता है? हम आपके उन चरणों का स्थायी रूप से ध्यान भी नहीं कर पातीं, जो ब्रह्मा जैसे महात्माओं के लिए आपके साक्षात्कार के लक्ष्य हैं। आप हम पर कृपालु हों और ऐसा करें कि हम आपमें अपने को किंचित् मात्र एकाग्र कर सकें। हम अब भी अपने कर्मफल भोग रही हैं, अतएव हम आपका ध्यान कैसे कर सकती हैं, जो महान् योगियों के भी लक्ष्य हैं? ऐसे योगी अपार बुद्धिमान होते हैं, किन्तु हम तो दुर्बल मनवाली स्त्रियाँ हैं। आप कुछ ऐसा करें, जिससे भौतिक जीवन के इस गहरे कूप से हम उबर सकें।

शुद्ध भक्तों को न तो भौतिक उत्थान की, न ही आध्यात्मिक मोक्ष की कभी इच्छा रहती है। और यदि भगवान् उन्हें ऐसे वर प्रदान करते हैं, तो भक्तगण प्राय: उन्हें अंगीकार करने से मना कर देते हैं। जैसाकि भगवान् कृष्ण ने *श्रीमद्भागवत* के ग्यारहवें स्कन्ध में(११.२०.३४) कहा है—

न किञ्चित् साधवो धीरा भक्त ह्येकान्तिनो मम।

वाञ्छन्त्यपि मया दत्तं कैवल्यमपुनर्भवम्॥

''चूँकि मेरे भक्तों में सन्त स्वभाव तथा गम्भीर बुद्धि रहती है, अतएव वे पूर्णतया मुझमें आत्मसमर्पण कर देते हैं और मेरे अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु की इच्छा नहीं करते। दरअसल, यदि मैं उन्हें जन्म-मरण से मुक्ति भी प्रदान करूँ तो वे उसे स्वीकार नहीं करते।'' इसीलिए यह उचित ही है कि जब कृष्ण उन्हें ज्ञान योग की शिक्षा देने का प्रयास करते हैं, तो वे किञ्चित ईर्ष्यापूर्ण क्रोध से उत्तर देती हैं।

इस तरह श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर के अनुसार, इस श्लोक में गोपियाँ जो वचन कहती हैं उसकी व्याख्या इस प्रकार की जा सकती है, ''हे अज्ञान के अंधकार को दूर करने वाले सूर्य! हम इस दार्शनिक ज्ञानरूपी सूर्य की किरणों से झुलस रही हैं। हम तो चकोर हैं, जो आपके सुन्दर मुखमण्डल से निकलती हुई ज्योत्स्ना पर निर्भर करती हैं। कृपया हमारे साथ वृन्दावन वापस चलें और हमें पुन: जीवनदान दें।''

और यदि कृष्ण यह कहें कि ''द्वारका चलो, वहाँ हम मिल कर आनन्द लूटेंगे'' तो वे उत्तर देंगी कि श्री वृन्दावन उनका घर है और वे उससे इतनी अनुरक्त हैं कि अन्यत्र कहीं निवास नहीं कर सकतीं। केवल वहीं पर, गोपियों का अभिप्राय है, कृष्ण अपनी पाग में मोरपंख खोंस कर तथा अपनी वंशी के

मोहक संगीत से उन्हें आकृष्ट कर सकेंगे। यदि वे वृन्दावन में फिर से प्रकट हों तभी गोपियाँ बच सकती हैं, किसी प्रकार के ध्यान या आत्मा सम्बन्धी सैद्धान्तिक ज्ञान से नहीं।''

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत ''वृन्दावनवासियों से कृष्ण तथा बलराम की भेंट'' नामक बयासिवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।